National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2025; 1(62): 168-172
© 2025 NJHSR
www.sanskritarticle.com

डॉ.अमित कुमार पाण्डेय
बिलासपुर, छत्तीसगढ़

Correspondence:
डॉ.अमित कुमार पाण्डेय
बिलासपुर, छत्तीसगढ़

परमहंस शुकदेव और श्रीमद्भागवत का तात्विक स्वरुप

डॉ.अमित कुमार पाण्डेय

प्रस्तावना :- श्रीमद्भागवत महापुराण केवल एक पौराणिक ग्रंथ ही नहीं, अपितु समस्त वेदान्त-सिद्धान्तों का परिपक्व फल है। यह ग्रन्थ न तो केवल कर्मकाण्ड की प्रतिष्ठा करता है और न ही शुष्क ज्ञान का प्रतिपादन; अपितु यह ज्ञान, भक्ति और वैराग्य—इन तीनों का सम्यक् समन्वय प्रस्तुत करता है। इसी कारण शास्त्रकार ने इसे निगमकल्पतरु का पका हुआ फल कहा है—

निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम्।

(श्रीमद्भागवत १.१.३)

भागवत का प्रधान उपदेश यह है कि भक्ति किसी अज्ञानजन्य भावुकता का नाम नहीं, बल्कि वह शुद्ध अन्तःकरण की परिणति है। इसलिए भागवत वर्णन आता है कि —

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।
अहैतुक्यप्रतिहता यया आत्मा सुप्रसीदति॥

(श्रीमद्भागवत १.२.६)

भागवत में प्रतिपादित ज्ञान अनुभूत ज्ञान है। शुकदेव जैसे ब्रह्मज्ञानी का भागवत-कथन इस बात का प्रमाण है कि भागवत शास्त्र केवल उपदेश नहीं, बल्कि अनुभूति का ग्रन्थ है—

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिं इत्थम्भूतगुणो हरिः॥

(श्रीमद्भागवत १.७.१०)

भागवत का यह श्लोक दार्शनिकता का शिखर है, क्योंकि यहाँ यह सिद्ध किया गया है कि ब्रह्मनिष्ठ आत्माराम मुनि भी भगवान के गुणों में आकृष्ट हो जाते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि भक्ति ज्ञान की विरोधिनी नहीं, बल्कि उसकी परिपूर्णता है।भागवत का प्रयोजन है—अहंकार का क्षय, आसक्ति का त्याग और भगवदनुसंधान। कलियुग में, जहाँ कर्म और ज्ञान दोनों दुर्बल हो जाते हैं, वहाँ भागवत-भक्ति ही सर्वसुलभ मोक्षमार्ग है—

कलौ नष्टदृशामेष पुराणार्कोऽधुनोदितः।

(श्रीमद्भागवत १.३.४३)

श्रीमद्भागवत महापुराण भारतीय अध्यात्म की वह दिव्य धरोहर है, जिसमें वेदान्त का गाम्भीर्य, उपनिषदों की अनुभूति और भक्ति की सरसता—तीनों एक साथ उपलब्ध हैं।

"श्रीमद्भागवत में महामुनि शुकदे का प्रादुर्भाव"

श्रीमद्भागवत महापुराण में शुकदेव मुनि का प्रवेश एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक प्रसंग है, क्योंकि यहीं से भागवत-कथा का वास्तविक प्रवाह आरम्भ होता है। यह प्रसंग प्रथम स्कन्ध के उन्नीसवें अध्याय में वर्णित है। राजा परीक्षित, जिन्हें ब्राह्मण कुमार शृंगी द्वारा सात दिनों में सर्प-दंश से मृत्यु का

शाप प्राप्त हो चुका था, राज्य का परित्याग कर गंगातट पर प्रायोपवेश करते हैं। वहाँ अनेक महर्षि—जैसे अत्रि, वसिष्ठ, विश्वामित्र, जमदग्नि, भारद्वाज आदि—एकत्र हो जाते हैं। परीक्षित समस्त ऋषियों से विनीत भाव से पूछते हैं कि मृत्यु के समीप स्थित मनुष्य के लिए परम कर्तव्य क्या है।इसी गम्भीर आध्यात्मिक वातावरण में शुकदेव मुनि का प्रवेश होता है। शुक का आगमन किसी औपचारिक आमन्त्रण से नहीं, अपितु लोक-कल्याण हेतु स्वतःस्फूर्त करुणा से होता है। भागवतकार इस प्रवेश का अत्यन्त मार्मिक चित्रण करते हैं—

तत्रोपजग्मुः शुकमुख्याः समागता महर्षयो ब्रह्मविदां वरिष्ठाः ।

(श्रीमद्भागवत १.१९.२५ — भावानुसार)

शुकदेव मुनि का स्वरूप अत्यन्त विलक्षण बताया गया है। वे ब्रह्मनिष्ठ, अविचल, दिगम्बर और बालकवत् प्रतीत होते हैं। उनका तेज ऐसा था कि समस्त सभासद् उन्हें देखकर सहसा खड़े हो गए। स्वयं राजा परीक्षित ने उन्हें ब्रह्मज्ञान का अधिकारी समझकर अपना प्रश्न प्रस्तुत किया—

परीक्षितोऽथ राजर्षिःशुकं ब्रह्मर्षिसत्तमम् ।
संनिधायाश्रमं प्राप्तं परिपप्रच्छ धर्मवित् ॥

(श्रीमद्भागवत १.१९.२५)

यह श्लोक सूचित करता है कि शुकदेव को देखकर परीक्षित ने निश्चय कर लिया कि यही वह महापुरुष हैं जो मृत्यु के मुख में खड़े व्यक्ति को परम तत्त्व का उपदेश दे सकते हैं।शुकदेव मुनि का आगमन केवल एक ऋषि का आगमन नहीं था, बल्कि वह भागवत-तत्त्व के अवतरण का क्षण था। वे न तो किसी सम्प्रदाय के प्रवक्ता थे, न किसी आश्रम-बंधन में बँधे हुए। फिर भी, करुणावशात् उन्होंने राजा परीक्षित के प्रश्न का उत्तर स्वीकार किया। इस प्रकार शुक और परीक्षित के संवाद से श्रीमद्भागवत की कथा आरम्भ होती है।शुकदेव के प्रवेश के समय ऋषियों की सभा में एक प्रकार का मौन और आध्यात्मिक स्पन्दन उत्पन्न हो जाता है। वे बालकवत् सरल, परन्तु ब्रह्मज्ञान में परम प्रौढ़ हैं। इसीलिए उन्हें ब्रह्मर्षिसत्तम कहा गया है। भागवत में यह भी संकेत है कि शुक का प्रवेश स्वयं भगवान की प्रेरणा से हुआ—

नष्टप्रायेष्वभद्रेषु नित्यं भागवतसेवया ।
भगवत्युत्तमश्लोकेभक्तिर्भवति नैष्ठिकी ॥

(श्रीमद्भागवत १.२.१८)

अतः शुकदेव का प्रवेश भागवत के शुद्ध भक्ति-सिद्धान्त को प्रतिष्ठित करता है। यही प्रसंग आगे चलकर सात दिनों की भागवत-कथा का आधार बनता है, जो कलियुग के जीवों के लिए मोक्षमार्ग का प्रकाश स्तम्भ है।

प्रस्तुत श्लोक स्वयं शुक एवं उनके उच्च आध्यात्मिक अनुभवों, जिनका उन्होंने अध्यात्म दीपम् 'आध्यात्मिकता का दीप' जलाकर इस अद्भुत ग्रन्थ में विकास किया, की चर्चा करता है। संसार में लोग अन्धकार एवं मोह तथा भ्रम में रह रहे हैं। इसलिए, प्रज्ञा-पुरुष शुक, शुद्ध करुणा के कारण, हमारे जीवन को प्रदीप्त करने के लिए हमें आध्यात्मिकता का प्रदीप प्रदान करते हैं। श्लोक कहता है :

यः स्वानुभावमखिलश्रुतिसारमेकम् -
अध्यात्मदीपमतितितीर्षतां तमोऽन्धम् ।
संसारिणां करुणयाऽऽह पुराणगुह्यं तं -
व्याससूनुमुपयामि गुरुं मुनीनाम् ।। १.२.३ ।।

'मैं व्यास के पुत्र एवं ऋषियों के गुरु शुक की शरण में आश्रय लेता हूँ, जिन्होंने समस्त वेदों का सार लेकर, इस गहन-गुह्य पुराण के रूप में, अपने स्वानुभव से, आध्यात्मिकता एक दीप (अध्यात्म दीपम्) जलाया तथा इसे करुणावशात् संसार में रहनेवाले उन लोगों को दिया, जो सांसारिक नहीं होना चाहते, बल्कि अज्ञान एवं भ्रान्ति के अन्धकार से निकलने के लिए तीव्र रूप से लालायित या उत्कण्ठित हो रहे हैं।'अन्तिम पंक्ति कहती है, तं व्याससूनुमुपयामि गुरुं मुनीनाम्, 'मैं व्यास के पुत्र, इन महान् शुक के शरणागत होता हूँ।' क्यों? शुक ने क्या किया? 'अपने अनुभव के सागर' स्वानुभावम्, से तथा श्रुतिसारम्, समस्त श्रुतियों, समस्त उपनिषदों के सार से, उन्होंने अध्यात्मदीपम्, आध्यात्मिकता का दीप जलाया 'उन्हें जो संसार में हैं, परन्तु संसारी नहीं होना चाहते, जो नहीं चाहते कि संसार या सांसारिकता उनमें प्रवेश करे, जो इसके जाल (फन्दे) से बाहर निकल जाना चाहते हैं; तथा अतितितीर्षतां तमोऽन्ध्यम्, 'जो अज्ञान एवं मोह-भ्रान्ति के अन्धकार से बाहर निकल जाने के लिए प्रकाश की तलाश करते हैं', प्रदान किया। श्लोक कहता है कि, ऐसे लोग, पिबत भागवतं 'कृपया आइए और इस भागवतं के का पान कीजिए। उन्हें शुक श्रीमद्भागवतं, जो पुराणगुह्यं 'गहन-गम्भीर पुराण' है, का आध्यात्मिक दीप प्रदान करते हैं। वे इसे बिना इस आशा-अपेक्षा के कि आप प्रतिदान में उन्हें धन्यवाद या और कुछ प्रदान करेंगे, महज शुद्ध करुणावशात्,करुणया, प्रदान करते हैं।

शुकदेव जी के विषय में, कुछ और उल्लेखनीय श्लोक हैं, क्योंकि पूरा भागवत ग्रन्थ तत्त्वतः शुक के द्वारा भारत के तत्कालीन सम्राट तथा अर्जुन के पोते परीक्षित को दिये गये उपदेश हैं। परीक्षित सात दिनों के भीतर मरनेवाले थे तथा अनेक ऋषियों से घिरे हुए, गंगा के तट पर निवास कर रहे थे। तभी शुक उपस्थित होते हैं तथा भागवत की कथा कहते हैं। इसी कारण से शुक यहाँ आये हैं। और दो या तीन श्लोकों में शुक का भलीभाँति वर्णन किया गया है:

प्राची के यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यं-
द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव।
पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदुः तं-
सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि ।। १.२.२।।

अर्थात 'मैं श्री शुकदेवजी को नमस्कार करता हूँ, जो अपने जन्म से ही अपनी प्रबुद्ध या ज्ञानसम्पन्न अवस्था के कारण कर्मानुष्ठानों (समस्त लौकिक-वैदिक कर्मों से) मुक्त, बिल्कुल अकेले ही अपने घर और सगे-सम्बन्धियों को त्याग कर वन-भ्रमण को निकल पड़े तथा जिन्होंने अपने शोकातुर पिता द्वैपायन (व्यास) के द्वारा 'हे पुत्र! तुम कहाँ हो' पुकारते हुए पीछा करने पर वन के वृक्षों की प्रतिध्वनि के द्वारा उत्तर दिया, मानो अद्वैतता के सत्य की अपनी अनुभूति के कारण वे उन वृक्षों तथा अन्य समस्त प्राणियों की आत्मा थे।'

शुक ने, अपने उपनयन' के पहले ही, जब वे मात्र सोलह वर्ष के बालक थे, घर छोड़ दिया और वन में चले गये। उनके पिता, व्यास, जो अपने दूर जाते देखकर निश्चय ही अशान्त और विकल-विह्वल हो गये होंगे, पुत्र! पुत्र! पुत्र! कह कर जोरों से चीत्कार करते हुए शुक के पीछे दौड़ पड़े, और वृक्षों तथा पौधों ने रुदन-क्रन्दन भरे विलाप को प्रतिध्वनित किया।शुक से सम्बन्ध में अगला श्लोक और भी अधिक विशिष्ट-विलक्षण है। यहश्लोक कहता है :

दृष्ट्वानुयान्तमृषिमात्मजमप्यनग्नंदेव्यो-
ह्रिया परिदधुर्न सुतस्य चित्रम् ।
तद्वीक्ष्य पृच्छति मुनौ जगदुस्तवास्ति-
स्त्रीपुम्भिदा न तु सुतस्य विविक्तदृष्टेः ।। १.४.५ ।।

जिस समय शुकदेव वन जा रहे थे, पूर्णतः नग्न, कुछ स्त्रियाँ एक सरोवर स्नान कर रही थीं। अपने शरीर पर बिना किसी वस्त्र के (पूर्णतः नग्नावस्था में) सोलह वर्ष के युवक शुक, सामने से जा रहे थे। उन स्त्रियों ने शुक को देखा, परन्तु उन्होंने किसी प्रकार की लज्जा का अनुभव नहीं किया। किन्तु, जब थोड़ी देर बाद ही, वस्त्रों से पूर्णतः सज्जित, वृद्ध महर्षि व्यास वहाँ पहुँचे, तो वे स्त्रियाँ शीघ्र ही जल से बाहर निकल आयीं और अपने को वस्त्रावृत (कपड़े से आच्छादित) कर लिया। इस पर वेद व्यास बहुत विस्मित हो गये। उन्होंने पूछा, 'तुम लोगों ने मेरे युवान पुत्र के सामने लज्जा का अनुभव नहीं किया। परन्तु, भली भाँति वस्त्र धारण किया हुआ मैं बूढ़ा हूँ; और तुम सब इतनी लज्जा महसूस कर रही हो ! यह क्या बात है?' स्त्रियों ने उत्तर दिया – 'हे महर्षि, आप में शरीर चेतना है । परन्तु, शुक को अपनी देह का कोई बोध नहीं है, इसलिए, हम लोगों को भी उनके सामने देह का कोई बोध नहीं था।'

श्रीमद्भागवत का तात्विक स्वरुप

श्रीमद्भागवत हमारी पुण्य-परम्परा में भक्ति के शीर्ष ग्रन्थों में से एक है। समग्र भारतवर्ष में परम लोकप्रिय इस ग्रन्थ (पुराण) ने कवियों, सन्त-महात्माओं एवं कलाकारों को प्रेरित-उत्प्रेरित किया है, क्योंकि उनकी कला के लिए उपादान (सामग्री) का यह एक व्यापक-विशाल क्षेत्र प्रदान करता है।

भागवत का अर्थ है, वह जो भगवान परम धन्य परमात्मा - के विषय में विचार करता है। इसमें कुल मिलाकर अठारह हजार श्लोकों से युक्त बारह स्कन्ध हैं। इसका विषय है शुद्ध प्रेम शुद्ध प्रेम का स्वरूप या तत्त्व, आप इसे कैसे प्राप्त कर सकते हैं, तथा सन्तों एवं ऋषियों की कथाएँ जो प्रेम को इसके विभिन्न रूपों में सोदाहरण स्पष्ट करती हैं। पहला श्लोक ही अत्यन्त विलक्षण चमत्कारपूर्ण है। यह कहता है :

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः
स्वराट् तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः ।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि ।।१.१.१ ।।

'वह, जिससे इस जगत् की सृष्टि, स्थिति और प्रलय घटित होते हैं; जो इसका उपादान एवं निमित्त दोनों कारण है; जो सर्वविद् - सर्वज्ञ है; जो स्वनियन्त्रित स्वयं प्रकाश, एकमेव स्वतन्त्र सत्ता है; जिसने वेद- ज्ञान का रहस्योद्घाटन कर ब्रह्मा के चित्त को आलोकित किया; जिसकी प्रज्ञा श्रेष्ठतम ऋषि-मुनियों को भी विस्मित- विमोहित कर देनेवाली है; जिस प्रकार अग्नि, जल और पृथ्वी अपने भौतिक सम्मिश्रण होने पर भी अपनी मूल प्रकृति को बदले बिना अपने कारणों में स्थित रहती हैं, प्रभावित किये बिना वस्तुतः स्थित (टिकी) रहती है; जिसकी चेतना के प्रकाश में उसी प्रकार जिसमें त्रिगुणमयी (जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति रूपा) सृष्टि उसे रंच मात्र हैं। किसी असत् के लिए कोई स्थान नहीं है - उस परम सत्य-स्वरूप परमात्मा काहम ध्यान करते हैं।इस श्लोक पर वेदों के गायत्री-मन्त्र का प्रभाव है। गायत्री कहती है भर्गो देवस्य धीमहि, हम परमात्मा की महिमा का ध्यान करते हैं। चूँकि श्लोक की अन्तिम पंक्ति सत्यं परं धीमहि, 'हम परम् सत्य का ध्यान करते हैं', से समाप्त होती है, यह हमें गायत्री का स्मरण कराती है। इसलिए, इस श्लोक को भागवत की गायत्री कहा गया है। परम सत्य क्या है? जन्म आदि अस्य यतः यह है 'वह जिससे इस जगत का आविर्भाव हुआ है, जिसमें यह स्थित है, तथा जिसमें यह अनन्तः विलीन होजाएगा।'

उपनिषदों के अनुसार, वह स्रोत ब्रह्म, यानी परम सत्य है, जिसकी प्रकृति शुद्ध चैतन्य है। यह अद्वैत है। अतः, भागवत की उक्ति है कि यदि यह विश्व- ब्रह्माण्ड परम सत्य से उद्भूत हुआ है तो यह असत्य या मिथ्या नहीं हो सकता, यह वास्तविक या सत्य है; यह अर्थ इस

श्लोक की तीसरी पंक्ति के अन्त के शब्दों यत्र त्रिसर्गः अमृषा, 'जिसके सान्निध्य से इस अखिल विश्व का अवास्तविक या काल्पनिक होना समाप्त हो जाता है' - के द्वारा अभिव्यंजित होता है। एक मत यह है : एकमेव अद्वितीय ब्रह्म ही सत्य है, अनेक मिथ्या है। दूसरा मत जो यहाँ प्रस्तुत किया गया है कहता है, अनेक में एक को देखने पर अनेकता से भरे समग्र विश्व-ब्रह्माण्ड का मिथ्या या अवास्तविक होना समाप्त हो जाता है। केवल एकमेव अद्वितीय वास्तविकता (अर्थात् ब्रह्म) का इसमें अस्तित्व होने से ही यह विश्व-ब्रह्माण्ड सत्य या वास्तविक है। यह ब्रह्माण्ड (सृष्टि) अमृषा है। मृषा का अर्थ है अवास्तविक, काल्पनिक या मिथ्या, और अमृषा का अर्थ है 'अवास्तविक (मिथ्या) नहीं।' चूँकि अनेक में एक अवस्थित है, इसलिए विश्व असत्य या काल्पनिक नहीं है। जैसा कि श्रीरामकृष्ण परमहंस के द्वारा कहा गया है, शून्य का कोई मूल्य नहीं है, किन्तु शून्य पहले १ अंक के जोड़ देने से इस शून्य का मूल्य हो जाता है और यह मूल्य के प्रत्येक नये शून्य के जोड़ने से बढ़ता जाता है। यहाँ तक कि असंख्य-अनन्त शून्यों का कोई मूल्य नहीं है जब तक आप इसके पहले १ का अंक नहीं लगाते। वह 'एक' वस्तुओं और विषयों या घटनाओं के विश्व के सन्दर्भ में शुद्ध चेतना के सम है। भागवत उस असीम एक का, जो मात्र अकेले ही विश्व को वास्तविक या सत्य बनाता है, गुणगान करता है, वह हमें अपने जीवन और कर्म तथा अन्तर-मानवीय सम्बन्धों में ईश्वर की अनुभूति प्राप्त करने को कहता है। अनेक में एक का अनुभव करो। तब यह अनेकता से भरा संसार मिथ्या या अवास्तविक अमृषा - नहीं रह जाता। इस प्रारम्भिक श्लोक में, इसलिए, हम जीवन और आचरण, तथा सुखद अन्तर-मानवीय सम्बन्धों की आध्यात्मिकता की नींव पाते हैं। अनेक में एक के होने के कारण संसार असत्य नहीं है का यह भाव, भारत के आध्यात्मिक जीवन में भक्ति के मार्ग का एक महत्त्वपूर्ण निर्देशन है। जब तक संसार का ईश्वरीय स्वरूप या गुण नहीं है, तब तक भक्ति का मार्ग पूर्णत: विकसित नहीं हो सकता। इसलिए, यत्र त्रिसर्गः अमृषा, और तत्पश्चात् सत्यं परं धीमहि के द्वारा भारत में यह भाव व्यक्त किया गया था।

विश्व के उद्भव का यह वर्णन जैसा कि वेदान्त में प्रस्तुत किया गया है, उसकी प्रतिध्वनि आधुनिक खगोल विज्ञान में प्राप्त होती है; आधुनिक खगोल विज्ञान कहता है कि यह संसार एक पृष्ठभूमिक उपादान का विस्फोट, विस्तार एवं विकास है, जिसमें यह विश्व अन्त में लौट जायगा अर्थात् प्रत्यावर्तित हो जायगा । वेदान्त की भाषा में 'एक से, अनेक आये हैं, और एक के पास, अनेक लौट जाएँगे।' एक, अ-द्वैत सत्ता, ब्रह्म ने अपने आपको अनेक में प्रबर्धित कर लिया, जैसा कि वेद इसे इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं, एकोऽहम् बहुस्याम् 'मैं एक हूँ, मुझे अनेक होने दो।' और अन्त में सारी विविधताएँ एक में पुन: विलीन हो जाएँगी। आधुनिक खगोल- भौतिकी (ऐस्ट्रो फिजिक्स) का मानना है कि वह पृष्ठभूमिगत उपादान (Background material) एक भौतिक पदार्थ का एक अत्यन्त घना टुकड़ा है, जब की वेदान्त उस पृष्ठभूमिगत तत्त्व को शुद्ध चेतना, असीम और अद्वैत ब्रह्म या आत्मा मानता है। दोनों में यही अन्तर है। और श्लोक कहता है 'हम उस अद्वैत शुद्ध चैतन्य का ध्यान करते हैं।' हम लोग अब आधुनिक खगोल-विज्ञान को चेतना के रूप में परम सत्य के वेदान्तिक विचारों के निकट आते हुए पाते हैं। खगोलविद् फ्रेड होयले (Fred Hoyle) की नवीन पुस्तक का शीर्षक है द इन्टेलिजेन्ट युनिवर्स (प्रबुद्ध विश्व)। यह पुस्तक इसे (चैतन्य के रूप में परम सत्य को) ब्रह्म की वेदान्तीय अवधारणा के निकटतर लाती है। दो श्लोकों के पश्चात्, हम एक दूसरा सार्थक या अर्थाभिव्यंजक श्लोक पाते हैं। जिसकी चर्चा हमने भूमिका में की है यह श्लोक कहता है कि यह भागवत एक पक्षी, शुक द्वारा चखा हुआ अथवा स्वाद लिया हुआ एक पका और रसीला (रसमय) फल है। अब, संस्कृत में शुक का अर्थ है एक पक्षी, और यह, इस ग्रन्थ के कथा-वाचक, ऋषि व्यास के महान् पुत्र की ओर भी संकेत करता है। यह कवि और ऋषि शुक, जिनके के मधुर फल का अमृत निःसृत होता है, तथा इस फल के अमृत का पान करने के लिए हमें बार-बार प्रबोधित किया जाता है, के सम्बन्ध में एक लाक्षणिक या अन्योक्तिपरक संकेत है :

निगम कल्पतरोर्गलितं फलं-
शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ।
पिबत भागवतं रसमालयं-
मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ।। १.१.३ ।।

'हे रसिक और भावुकजन, (जो प्रेम का महत्त्व समझ सकते हैं तथा जिन्होंने कुछ प्रेम का अनुभव प्राप्त किया है) आप लोग रस के, शुद्ध प्रेम के यथार्थ सागर भागवत का पान करते रहें। भागवत वेदों के कल्पवृक्ष का एक पका हुआ एवं अमृत के समान फल है जिसे ऋषि शुक के द्वारा नीचे गिराया गया है।'

यदि आप में प्रेम, किसी प्रकार के प्रेम का भाव है, यदि आप पृथ्वी पर एक रसिक और एक भावुक हैं, तो आप निश्चय ही, बारम्बार इस अमृत का पान करना या उपभोग करना पसन्द करेंगे। महर्षि व्यास के पुत्र, महर्षि शुक ने हस्तिनापुर में, अर्जुन के पौत्र, राजा परीक्षित को प्रेम के इस शास्त्र का उपदेश दिया।इस श्लोक का प्रत्येक शब्द रमणीय है। यह कहता है कि यह महान भागवत रसम् आलयम्, रस का एक सागर है। भारतीय सौन्दर्यशास्त्र में रस आनन्द को द्योतित करनेवाला एक अत्यन्त उच्च पारिभाषिक शब्द है। कला, सौन्दर्य एवं

अन्य वस्तुओं का मूल्यांकन या गुण-दोष विवेचन रस की भाषा या शब्दावली में ही किया जाता है, तथा इसके मूल्यांकन या रसास्वादन की क्षमता ही किसी व्यक्ति को रसिक बनाती है। अतः, यदि आप एक गुणग्राहक, पारखी हैं, एक रसिक हैं तो फिर आप इस रस अर्थात् भागवत का पान करें। यह रसं क्या है? निगमकल्पतरोर्गलितं फलं। वेदों के वृक्ष पर अमृतमय रस से परिपूर्ण एक पका हुआ फल था। एक पक्षी आया और उस फल को चखा, और वह फल गिर पड़ा। यहाँ पक्षी है महर्षि शुक। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, शुक शब्द का सामान्यतः अर्थ होता है पक्षी । परन्तु यहाँ यह महर्षि ओर निर्देश या संकेत करता है। तदुपरान्त, पिबत, इस अमृतमय रस को पीते रहिये। यदि आप इसका एक बार ही पान करते है तो आप परितृप्त नहीं होंगे। इसलिए इसका बार-बार, मुहुरहो पान करते रहिये; और भुवि भावुकाः, यदि आपमें रस के प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने की क्षमता है, तो आप परमानन्द (स्वर्गीय सुख) के इस अद्भुत-उत्कृष्ट सागर का रसोपभोग करने के योग्य हो सकेंगे। यदि आप किसी नीरस व्यक्ति के समक्ष काव्य-पाठ करें तो वह व्यक्ति (स्त्री या पुरुष) इसका किंचित् मात्र भी मूल्यांकन अथवा रसास्वादन नहीं कर सकेगा। इसी प्रकार, केवल वे ही, जिनके हृदय में प्रेम है, श्रीमद्भागवत रूपी प्रेम के इस सागर का रसास्वादन कर सकते हैं।

निष्कर्ष :-शोध के क्रम में यह भी प्रतिपादित हुआ है कि भागवत महापुराण का दार्शनिक आधार अद्वैत, विशिष्टाद्वैत एवं द्वैत—तीनों परम्पराओं को आत्मसात करता हुआ एक समन्वयात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। ब्रह्म, परमात्मा और भगवान—इन तीनों तत्त्वों का समन्वित विवेचन भागवत को दार्शनिक दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध बनाता है—

वदन्ति तत् तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्यते॥

(श्रीमद्भागवत 1.2.11)

अतः इस शोधपत्र के उपसंहार में यह निष्कर्ष रूपेण कहा जा सकता है कि श्रीमद्भागवत महापुराण केवल धार्मिक आस्था का ग्रन्थ न होकर भारतीय दार्शनिक, सांस्कृतिक और नैतिक चेतना का जीवन्त घोष है। आधुनिक युग की वैचारिक अशान्ति, भौतिकतावाद और मूल्य-संकट के संदर्भ में भागवत का भक्ति-सन्देश मानवता के लिए अमृततुल्य है। यही कारण है कि सहस्राब्दियों के पश्चात् भी श्रीमद्भागवत महापुराण साधकों, विद्वानों और शोधकर्ताओं के लिए प्रेरणा का अक्षय स्रोत बना हुआ है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. श्रीमद्भागवत महापुराण (मूल ग्रन्थ) वेदव्यासकृत — गीता प्रेस, गोरखपुर / भाण्डारकर संस्करण
2. भागवत तात्पर्य / भागवत भावार्थ दीपिका श्रीधर स्वामी कृत — प्राचीनतम एवं सर्वमान्य टीका
3. भागवत तत्त्वदीपिका श्री वल्लभाचार्य कृत — पुष्टिमार्गीय दृष्टि से महत्त्वपूर्ण
4. भागवत तात्पर्य निर्णयोपदेश श्री मध्वाचार्य कृत — द्वैत वेदान्त परम्परा में प्रमुख
5. भागवत चन्द्रिका विजयध्वज तीर्थ कृत — मध्व सम्प्रदाय की प्रामाणिक व्याख्या
6. भागवत सिद्धान्त रहस्य श्री जीव गोस्वामी कृत — गौड़ीय वैष्णव परम्परा का मूल ग्रन्थ
7. शुकदेव चरित्र एवं भागवत परंपरा पं. श्रीराम शर्मा आचार्य
8. भागवत धर्म का दार्शनिक विवेचन डॉ. राधाकृष्णन / डॉ. सत्यव्रत शास्त्री
9. भागवत और भक्ति आन्दोलन डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी
10. भागवत : एक सांस्कृतिक एवं दार्शनिक अध्ययन डॉ. वाचस्पति गैरोला / डॉ. बलदेव उपाध्याय